आशा के स्रोतों की तलाश

पल्लव

बाल साहित्य में नया क्या हो रहा है इसे देखना जितना रोचक है उतना ही आश्वस्त करने वाला और चिंता में डालने वाला भी। इस विरोधाभाषी कथन का मुख्य कारण है बाल साहित्य का सामान्य पाठकों के लिए सुलभ न होना और महंगा होना। यह अवश्य आश्वस्तिप्रद है कि बाल साहित्य के लिए समर्पित एकलव्य और एकतारा जैसे प्रकाशन संस्थानों ने लगातार श्रेष्ठ किताबों से साहित्य के इस इलाके को रोशन रखा है। कहानी कहना और सुनना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। बच्चों के लिए कहानी केवल मनोरंजन का काम नहीं करती बल्कि उन में उत्सुकता जगाने और उन्हें सवाल करना भी सिखाती है। शिक्षा के संदर्भ में अब विशेषज्ञ मानते हैं कि उपदेश तथा सीख देने वाली रचनाओं से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण वे रचनाएं हैं जो जीवन को देखने-जानने के स्वस्थ नजरिये का विकास करती हों। भूलना नहीं चाहिए कि जब हम 'बड़ों के साहित्य' में शिक्षाप्रद होने या सीख देने जैसी बातों का आग्रह नहीं करते तो बच्चों के साथ यह ज्यादती क्यों? इस संबंध में नए लिखे जा रहे बाल साहित्य के साथ-साथ क्या पुराने साहित्य मसलन लोककथाओं की भी कोई भूमिका हो सकती है? इस पर विचार करना चाहिए। लोककथाओं के संबंध में हम सब पहली बात यह जानते हैं कि उनमें जीवन सत्य जिस मनोरंजक ढंग से आते हैं वैसा साहित्य के और तरीकों में हमेशा नहीं होता। इसका कारण है कि इनके रचयिता कोई एक या दो व्यक्ति नहीं होते बल्कि इन्हें सामूहिक चित्त की लोक अभिव्यक्ति कहना चाहिए।

'चकमक' जैसी पत्रिका निकालने वाले एकलव्य संस्थान ने 'माड़ की लोककथा' नाम से छह पुस्तकों की शृंखला प्रकाशित की है जिसमें छह कहानियों का प्रकाशन किया गया है। इन सभी छह कहानियों का पुनःसृजन प्रभात ने किया है। ध्यान देने की बात है कि यह पुनर्लेखन या प्रस्तुति नहीं अपितु पुनःसृजन है। यहां एक सवाल पैदा होता है कि जो लोककथा सालों से समाज में प्रचलित है उसे कोई एक व्यक्ति दुबारा लिख दे तो क्या उसे लेखक के रूप में श्रेय मिलना चाहिए। इस संबंध में पहले बिज्जी का प्रसंग याद आता है जब 'बातां री फुलवारी' के दूसरे संस्करण में उन्होंने 'कदीमी लोककथावां' का कॉपीराइट अपने नाम लिख दिया था। दूसरा प्रसंग और पुराना है जब वाल्मीकि रामायण को तुलसीदास ने रामचरित मानस के नाम से अपनी भाषा (भाखा) में लिखा था। तो बात इतनी-सी है कि लोक साहित्य के पुनःसृजन और पुनर्लेखन में लेखक का पक्ष देखे-जाने बिना उसे कटघरे में खड़ा कर देना अनुचित है। यहां जिन लोककथाओं को प्रभात ने प्रस्तुत किया है उनमें वे अपनी तरफ से इतना जोड़ते चलते हैं कि इन्हें आज के दौर में लिखी गई 'लोककथा जैसी कहानी' भी कह सकते हैं।

प्रभात द्वारा तैयार पहली किताब है- 'कमेड़ी का गीत', जिसमें एक चिड़िया की कथा है जो अपने बच्चों के लिए चुग्गे की तलाश में बगीचे में जाती है जहां उसे बगीचे का माली पकड़कर बेल से बांध देता है। कमेड़ी रोती है, गिड़गिड़ाती है कि मेरे बच्चे इंतजार कर रहे हैं, जाने दो। लेकिन वह नहीं पसीजता। वह गीत गा-गाकर राह में जाने वालों को अपनी तकलीफ सुनाती है, सुनते सब हैं लेकिन कोई नहीं रुकता। न रैबारी और न पनिहारिनें। आखिर चूहों को उस पर दया आती है और वह मुक्त होकर अपने बच्चों तक पहुँचती है। यह गीत पढ़ना चाहिए -

ओ ऊंटों के लश्कर वाले मेरे बीर
नदिया किनारे मेरे बच्चे रे बीर
आंधी आएगी उड़ जाएंगे रे बीर
मेह आएगा बह जाएंगे रे बीर

पूरी कहानी जिस संवेदना का निर्माण करती है वह अप्रतिम है। जाहिर है लोक का हर्ष और दुःख, दोनों जब भी प्रकट होते हैं उनमें एक आदमी का हर्ष या दुःख नहीं होता।

दूसरी किताब 'सारस और सियार' है तो सियार की चतुराई और काइंयापन की कथा, किन्तु प्रभात उसे नए ढंग से व्याख्यायित कर हमारे समय की कहानी बना देते हैं। बात इतनी-सी है कि एक सियार और एक सारस में दोस्ती हो जाती है। सियार अपनी जायदाद सारस को दिखाता है जिसमें गुफा, झील और पहाड़ तक को अपनी निजी जायदाद बताता है। सारस उसे अपनी सम्पत्ति कैसे दिखाए? तो वह सियार को अपनी टांगों पर लटकाकर आकाश में ले जाता है। सियार पूछता है तुहारा हिस्सा कहां है? जवाब देखिये- 'मेरा हिस्सा कहीं नहीं है। यहां हिस्सों के लिए कोई जगह ही नहीं। हिस्से हैं ही नहीं। यहां पूरा का पूरा सबका है।' सबका सुनकर सियार सोचता है कि मैं अपना हिस्सा ले लूं। वह तुरंत तारबंदी कर देना चाहता है। जैसे ही इसके लिए सारस के पांव छोड़ता है धड़ाम से गिरता है। मूल कथा इतनी ही रही होगी। आगे प्रभात का नवाचार देख सकते हैं। वह दलदल में गिरा और एक चरवाहा उसे बचाता है। असल बात है सार्वजनिक और निजी सम्पत्ति की। हमारे जैसे बड़े और विशाल आबादी वाले देश में यह सवाल मुश्किल वाला है। लोग सार्वजानिक सम्पत्ति के नुकसान की परवाह नहीं करते या उसे अपना बनाने में लगे रहते हैं। ऐसे में क्या यह जरूरी नहीं कि सार्वजनिक का ऐसा उदार और व्यापक आश्यों वाला अर्थ दिया जाए, जैसा प्रभात ने दिया है। संकीर्णता केवल सम्पत्ति के मामलों में नहीं होती संबंधों में भी होती है। बच्चे ऐसे मामलों में बहुत परेशान होते हैं। 'चिड़िया की भाएली' इसी मिजाज की लोककथा है जहां एक तुनकमिजाजी और काइंया चुहिया अपनी भाएली (सखी) चिड़िया के सभी उपकारों को भूलकर हमेशा उस पर हेंकड़ी जमाती है। उसका दम्भ यहां तक है कि बैलगाड़ी के पहिये के नीचे दबकर मरने से बचाने पर वह चिड़िया से कहती है- 'वो तो पीठ दबवाने के लिए मैं खुद ही पहिए के नीचे आई थी। तू क्यों बीच में फुदकती हुई वहां आई। मैं तो आ ही रही थी।' हम सबने ऐसे अणूते (टेढ़े) लोग देखे हैं। क्या कीजिये इनका? कहानी का समाधान यही है कि फिर भी हमें संग रहना है।

लोककथाओं की दो खूबियां ये होती हैं कि इनमें कथा रस भरपूर मिलता है और आमतौर पर इनमें निर्बल या निर्धन को बलशाली या धनवान के सामने जीतता हुआ बताया जाता है। 'अच्छा मौसी अलविदा' जैसी मजेदार कहानी के अनेक रूप हिंदी की विभिन्न बोलियों में मिल जाएंगे। इसका एक रूप 'वर्तमान साहित्य' के शताब्दी कथा विशेषांक में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने प्रस्तुत किया था जो अवध क्षेत्र में प्रचलित है। यहां भी कथा का मूल वही है बस कुछ पात्र बदल गए हैं। चिड़िया भैंस पर बीट कर देती है तो भैंस भी उस पर गोबर करती है। बिल्ली गोबर में चिड़िया देखकर खुश हो जाती है लेकिन चिड़िया हिम्मत नहीं हारती। वह बिल्ली को मौसी कहकर खुद को धोने के लिए तैयार करती

है। बिल्ली उसे तालाब में ले जाकर धोती और सुखाती है। सूखते ही चिड़िया फुर्र हो जाती है। मजे-मजे की इस कहानी में हौंसले की बात बारीकी से आई है जो उपदेशपरक होते हुए भी उपदेशपरक नहीं लगती। शेष दो किताबें कल्पना की असीमित उड़ान का आनंद देने वाली कथाएं हैं। 'अंडे से निकला बछेरा तो झोंपड़ी से टपका' में ऐसे आदमी की कथा है जिसे घोड़े के अंडे चाहिए। भला ये कैसे मिलते। उसे एक व्यापारी कद्दू को घोड़े का अंडा कहकर बेच देता है। अब आदमी को इंतजार है कि इसमें से घोड़ा निकलेगा। गलतफहमियों और मूर्खताओं से भरी इस कहानी में सियार, शेर और बंदर भी आते हैं। ऐसी ही गप्प की मजेदार कथा है 'सियार और मोर', जिसमें तेज भूख लगने पर सियार अपने दोस्त मोर के हिस्से की दाल-बाटी भी खा जाता है और यहीं नहीं रूकता, वह क्रमशः मोर, बुढ़िया, बछड़ा, भालू, हाथी और शेर सबको खा जाता है। आगे नदी आती है तो वह नदी का सारा पानी भी पी जाता है और तभी उसका पेट फट जाता है। अब बताइये कौन-कौन निकला? इस मजेदार कहानी को एक कविता के मार्फत प्रभात बढ़ाते हैं जिसकी पंक्तियां हर खाने के बाद एक-एककर बढ़ती जाती हैं।

प्रभात का यह काम महत्त्वपूर्ण है और किताबों को सुनीता, मयूख घोष और नीलेश गहलोत ने अपने बहुत सुंदर चित्रों से सजाकर न भूलने लायक बना दिया है। लोककथाओं का ऐसा पुनःसृजन जिसमें समर्थ भाषा हो, नया मुहावरा हो, नये प्रसंगों की उद्भावना हो और जिनका लक्ष्य संवादधर्मिता हो वह काम महत्त्वपूर्ण ही माना जाएगा।

एकतारा के इम्प्रिंट जुगनू प्रकाशन की बड़ी सफलता इस बात में भी है कि इन्होंने हिंदी के श्रेष्ठ लेखकों को बच्चों के लिए लिखने के लिए तैयार कर लिया। इनकी अधिकांश किताबों को इस भावभूमि पर निर्मित किया गया है कि वे बच्चों को शिक्षा या उपदेश देने वाली पोथियों के स्थान पर नन्हें नागरिकों से संवाद करने वाली और उन्हें बड़े सवालों के लिए तैयार करने वाली रोचक किताबें बनें। एकतारा के सहयोगी लोगों में स्वयं प्रकाश, असगर वजाहत, विनोद कुमार शुक्ल, प्रियम्वद जैसे जाने माने लेखक हैं तो विदेशी श्रेष्ठ बाल साहित्य का अनुवाद भी इन पुस्तकों में शामिल है। असगर वजाहत की छोटी-छोटी कहानियों (या संवादों) की पुस्तक 'रानू मैं क्या जानूं?' स्वयं प्रकाश की 'हांजी नाजी' और 'सप्पू के दोस्त' यहां उल्लेखनीय हैं। स्वयं प्रकाश की कहानियां 'सप्पू के दोस्त' खास तरह के नास्टेल्जिया के साथ जीवन के यथार्थ को मजे मजे में देखने की कवायद है। इस शृंखला की उनकी पहली किताब 'प्यारे भाई रामसहाय' नेशनल बुक ट्रस्ट से आई थी और उसे साहित्य अकादेमी ने बाल साहित्य सम्मान के लिए भी चुना था। स्वयं प्रकाश अपनी इन कहानियों तक आते-आते अपना कथा-कौशल उस ऊंचाई तक ले गए हैं जहां कहानी के पाठकों में बड़े-छोटे का भेद खत्म हो जाता है। ऐसा हमने प्रेमचंद के यहां देखा था। 'इम्मी' इसका श्रेष्ठ उदाहरण है जिसमें कहानी की शुरुआत एक शोक प्रसंग से होती है। बच्चे अपने दोस्त इम्मी के पिताजी की मौत पर बैठने जाते हैं तो एक मजेदार प्रसंग होता है कि इम्मी उन्हें अपने आंगन में लगे अमरुद के पेड़ पर चढ़कर अमरुद खाने के लिए खुद कहता है। इम्मी फुटबाल का बहुत अच्छा खिलाड़ी है लेकिन अब उसे पिताजी का सब्जी वाला ठेला संभालना होगा। जब बच्चे पूछते हैं कि तू फुटबाल का क्या करेगा? तब इम्मी का जवाब सुनिए- 'फुटबॉल से रोटी नहीं मिलती। समझे? कोई कित्ता ही बड़ा प्लेयर हो जाए...? ये खेल-वेल सब भरे पेट वालों की बातें हैं।' यह समूचा प्रसंग ईदगाह जैसी अमर कहानी की याद दिलाता है जहां एक छोटा-सा बच्चा बुजुर्ग बन गया था। एक और कहानी है 'मजमेवाला', जिसमें ये बच्चे एक मजमेवाले गरीब आदमी की मदद करते हैं लेकिन उसे बचा नहीं पाते। स्वयं प्रकाश उस विडंबना की तरफ इशारा कर रहे हैं कि हमारी सभ्यता में करुणा, उपकार और सेवा जैसे पवित्र भाव क्या खत्म हो जाएंगे? आशा के इस अमर कथाकार ने नॉस्टेलजिया में आशा के उन सभी स्रोतों की तलाश की है और वे स्रोत उन्हें बच्चों में मिले। छोटी-छोटी कुल ग्यारह कहानियों का यह गुलदस्ता स्वयं प्रकाश की अपनी शैली में लिखी गई ऐसी कहानियों से बना है जिनमें बचपन के मीठे और मार्मिक प्रसंग हैं। अभावपूर्ण जीवन के बीच रोमांच की जगह बनाती इन कहानियों में

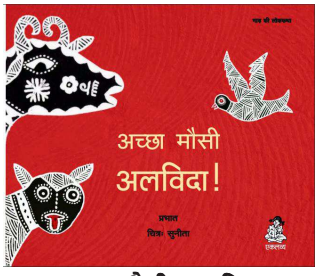

अच्छा मौसी अलविदा
चित्रकार : सुनीता
मूल्य : 40 रुपये

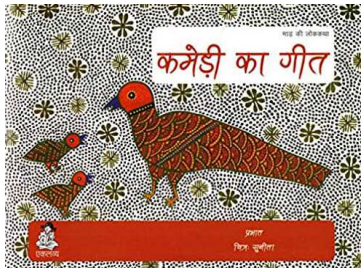

कमेड़ी का गीत
चित्रकार : सुनीता
मूल्य : 50 रुपये

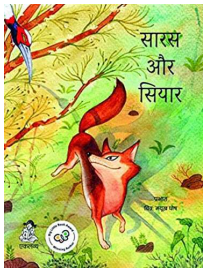

सारस और सियार
चित्रकार : मयुख घोष
मूल्य : 35 रुपये

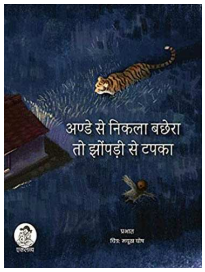

अण्डे से निकला...
चित्रकार : मयुख घोष
मूल्य : 50 रुपये

सभी पुस्तकों के लेखक **प्रभात** हैं और **प्रकाशक** : एकलव्य प्रकाशन, भोपाल, मध्य प्रदेश द्वारा

भारतीय मध्य वर्ग के हार्दिक चित्र भी हैं जब समाज से सामूहिकता और पारस्परिकता के लिए पर्याप्त सम्मान और स्थान बचा हुआ था। इस किताब के चित्र एलन शॉ ने बनाए हैं और अपनी खास शैली में किताब को ऐसे तैयार कर दिया है कि 'मालगुडी डेज' की याद आ जाए।

असगर वजाहत ने हिंदी में लगभग सभी प्रमुख विधाओं में उच्च स्तरीय रचनाएं दी हैं। बच्चों के लिए पहली बार उनकी किताब 'रानू मैं क्या जानूं?' आई है जिसमें रानू के सवाल हैं और पापा के जवाब। असल बात सवालों की ही है क्योंकि जवाब की दिक्क्त केवल रानू के पापा की नहीं हम सबकी है। ये सवाल मासूम हैं लेकिन इन्हें समझने पर पितृसत्ता, धर्मसत्ता और राजसत्ता कठघरे में दिखाई देती हैं। मसलन ईश्वर। रानू का वाजिब सवाल है कि अगर भगवान् सब कुछ जानते हैं तो मांगने पर ही क्यों देते हैं? ऐसी छोटी-छोटी पन्द्रह कहानियों की यह किताब बहुत रोचक ढंग से बुनियादी सवालों को उठाती है। एक जगह जब पापा के पास जवाब नहीं बचते तो देखिये- 'रानू तुम बहस मत करो... हमारा देश महान है... कहो, हमारा देश महान है। नहीं तो अभी तुम्हारे कान मरोड़ता हूं।' असगर वजाहत अपनी सवाल-जवाब शैली में ऐसी कहानियां रचते हैं कि बच्चे बड़ों के कान काटते नजर आते हैं। क्या इन्हें जवाब नहीं मिलने चाहिए? इन्हीं सवालों के जवाब की तलाश में स्वयं प्रकाश की छोटी-सी किताब 'हांजी नाजी' रची गई है जो कभी लतीफों का मजा देती है तो कभी तीखे सवालों से झुंझलाहट पैदा करती है। यही बात है जो ढर्राबद्ध हिंदी बाल साहित्य से इन किताबों को भिन्न और सार्थक बनाती है। हां, दोनों किताबों के चित्र अतनु राय के हैं और बेहद प्रभावशाली बन पड़े हैं।

वस्तुतः कहना चाहिए कि सुशील शुक्ल की सम्पादन दृष्टि और तक्षशिला के इन प्रयोगों ने हिंदी साहित्य के अब तक चले आ रहे उस विभाजन को खत्म किया है जिसके अंतर्गत बच्चों के लिए खास बाल साहित्यकार ही लिखते थे और जिन्हें तथाकथित मुख्य धारा का लेखक माना जाता है वे इस तरफ देखने से भी हिचकते थे। कहना न होगा कि इस विभाजन ने कितना नुकसान किया है। हिंदी साहित्य में ऐसी किताबों के आगमन से बाल साहित्य पर भी गंभीर चर्चा की शुरुआत हो और अधिकाधिक बच्चों तक इनका पहुंचना सम्भव हो तो चिंता की बात से मुक्ति मिले। ◆

लेखक परिचय : दिल्ली के प्रसिद्ध हिन्दू कॉलेज में पढ़ाते हैं और 'बनास जन' नाम से एक लघु पत्रिका का संपादन-प्रकाशन करते हैं।

संपर्क : 8130072004; pallavkidak@gmail.com